CHAPTER सत्रह

कालिय का इतिहास

इस अध्याय में बतलाया गया है कि कालिय ने किस तरह सर्पों के द्वीप को छोड़ा था और सोए हुए वृन्दावनवासी किस तरह जंगल की आग से बचाये गये थे।

जब राजा परीक्षित ने कालिय द्वारा सर्पों के निवास रमणक द्वीप को छोड़ने तथा गरुड़ द्वारा उसके प्रति शत्रुभाव प्रदर्शित किये जाने के बारे में पूछा तो श्री शुकदेव गोस्वामी ने इस प्रकार उत्तर दिया: उस द्वीप के सारे सर्प भयभीत थे कि कहीं गरुड़ उन्हें निगल न जाय। उसे प्रसन्न करने के लिए वे प्रति मास एक वटवृक्ष के नीचे भाँति भाँति की भेंटें चढ़ा आते थे। किन्तु कालिय मिथ्या अभिमानवश इन भेंटों को स्वयं खा जाता था। यह सुनकर गरुड़ अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और कालिय को मारने चल पड़ा तो इस सर्प ने विराट पक्षी गरुड़ को डँसना शुरू कर दिया। गरुड़ ने प्रचण्डतापूर्वक अपने पंख से उसे मारा जिससे कालिय अपनी जान बचाने के लिए यमुना नदी के सरोवर में भाग आया।

इस घटना के पूर्व गरुड़ एक बार यमुना नदी में आया था और मछलियाँ खाने लगा था। सौभरि ऋषि ने उसे रोकना चाहा किन्तु भूख का मारा गरुड़ ऋषि के निषेध को नहीं मान पाया अत: ऋषि ने उसे शाप दे दिया था कि यदि वह दुबारा वहाँ आया तो तुरन्त मर जायेगा। कालिय ने यह सुन लिया था इसलिए वह वहाँ निड़र होकर रहता था। किन्तु अन्त में कृष्ण ने उसे भगा दिया।

जब बलराम तथा वृन्दावन के सारे वासियों ने श्रीकृष्ण को विभिन्न प्रकार के मणियों तथा आभूषणों से अलंकृत होकर उस सरोवर से ऊपर निकलते देखा तो हर्ष से उन्होंने उनका आलिंगन किया। तब आध्यात्मिक गुरुओं, पुरोहितों तथा विद्वान ब्राह्मणों ने ग्वालों के राजा नन्द महाराज को बतलाया कि यद्यपि उनके पुत्र को कालिय ने अपने चंगुल में पकड़ रखा था किन्तु राजा के भाग्य से अब वह पुन: मुक्त हो चुका है।

चूँकि वृन्दावन के निवासी भूख, प्यास तथा थकावट के कारण त्रस्त थे अतएव उन्होंने वह रात यमुना के तट पर ही बिताई। अर्धरात्रि के समय जंगल में अग्नि भड़क उठी क्योंकि ग्रीष्मऋतु में यह जंगल सूख गया था। जब सोते हुए वृन्दावनवासियों को आग ने घेर लिया तो वे सहसा जगे और रक्षा के लिए कृष्ण की ओर दौंड़े। तब असीम बलशाली श्रीकृष्ण अपने प्रिय सम्बन्धियों तथा मित्रों को इस तरह पीड़ित देख तुरन्त ही उस दावाग्नि को पी गये।

श्रीराजोवाच
नागालयं रमणकं कथं तत्याज कालियः ।
कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा ने कहा; नाग—सर्पों का; आलयम्—वासस्थान; रमणकम्—रमणक नामक द्वीप; कथम्—क्यों; तत्याज—त्याग दिया; कालियः—कालिय ने; कृतम्—वाध्य किया गया; किम् वा—तथा क्यों; सुपर्णस्य—गरुड़ की; तेन—उससे, कालिय से; एकेन—अकेले; असमञ्जसम्—शत्रुता।

[इस प्रकार कृष्ण ने कालिय की प्रताड़ना की उसे सुनकर] राजा परीक्षित ने पूछा: कालिय ने सर्पों के निवास रमणक द्वीप को क्यों छोड़ा और गरुड़ उसीका से इतना विरोधी क्यों बन गया?

श्रीशुक उवाच
उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः
वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ।
स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि
गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; उपहार्यैः—भेंट पाने के पात्र; सर्प-जनैः—सर्प जाति के द्वारा; मासि मासि—हर महीने; इह—यहाँ (नागालय में); यः—जो; बलिः—भेंट; वानस्पत्यः—वृक्ष के नीचे; महा-बाहो—हे बलिष्ट भुजाओं वाले परीक्षित; नागानाम्—सर्पों के लिए; प्राक्—पहले से; निरूपितः—निश्चित; स्वम् स्वम्—अपना अपना; भागम्—अंश; प्रयच्छन्ति—भेंट करते; नागाः—सर्पगण; पर्वणि पर्वणि—मास में एक बार; गोपीथाय—रक्षा हेतु; आत्मनः—अपनी अपनी; सर्वे—सभी; सुपर्णाय—गरुड़ को; महा-आत्मने—बलशाली।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : गरुड़ द्वारा खाये जाने से बचने के लिए सर्पों ने पहले से उससे यह समझौता कर रखा था कि उनमें से हर सर्प मास में एक बार अपनी भेंट लाकर वृक्ष के नीचे रख जाया करेगा। इस तरह हे महाबाहु परीक्षित, प्रत्येक मास हर सर्प अपनी रक्षा के मूल्य के रूप में विष्णु के शक्तिशाली वाहन को अपनी भेंट चड़ाया जाया करता था।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने इस श्लोक की एक दूसरी भी व्याख्या दी है। *उपहार्यैः* शब्द का एक दूसरा अर्थ भी किया जा सकता है ''जिन्हें खाया जाना है उनके द्वारा।'' इसी तरह *सर्प-जनैः* का अर्थ है ''वे मनुष्य जो सर्प जाति के अधीन थे या उससे सम्बन्धित थे।'' इस पाठ के अनुसार, मनुष्यों का एक समुदाय सर्पों के अधीन हो गया था और उनके द्वारा खाये जा सकते थे। इससे बचने के लिए ये लोग सर्पों को मासिक भेंट चढ़ाते थे जिसमें से एक अंश वे गरुड़ को देते थे ताकि वह उन्हें न खा

जाय। यहाँ जो विशेष अर्थ प्रस्तुत किया गया है, वह श्रील सनातन गोस्वामी की टीका तथा श्रील प्रभुपाद द्वारा 'भगवान् कृष्ण' नामक ग्रन्थ के पर आधारित है। हर हालत में, सारे आचार्यों में मतैक्य है कि सर्पों ने गरुड़ से सुरक्षा मोल ले रखी थी।

विषवीर्यमदाविष्टः काद्रवेयस्तु कालियः ।
कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

विष—विष; वीर्य—तथा शक्ति के कारण; मद—नशे में; आविष्टः—लीन; काद्रवेयः—कद्रु का पुत्र; तु—दूसरी ओर; कालियः—कालिय; कदर्थी-कृत्य—अवहेलना करके; गरुडम्—गरुड़ की; स्वयम्—खुद; तम्—उस; बुभुजे—खाता था; बलिम्—भेंट को।

यद्यपि अन्य सभी सर्पगण ईमानदारी से गरुड़ को भेंट दे जाया करते थे किन्तु एक सर्प, कद्रु-पुत्र अभिमानी कालिय, इन सभी भेंटों को गरुड़ के पाने से पहले ही खा जाया करता था। इस तरह कालिय भगवान् विष्णु के वाहन का प्रत्यक्ष अनादर करता था।

तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन्भगवान्भगवत्प्रियः ।
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समपाद्रवत् ॥ ५॥

शब्दार्थ

तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; कुपितः—क्रुद्ध; राजन्—हे राजा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली गरुड़; भगवत्-प्रियः—भगवान् का प्रिय भक्त; विजिघांसुः—मारने की इच्छा से; महा-वेगः—फुर्ती से; कालियम्—कालिय की ओर; समुपाद्रवत्—दौड़ा।

हे राजन्, जब भगवान् के अत्यन्त प्रिय, परम शक्तिशाली गरुड़ ने यह सुना तो वह क्रुद्ध हो उठा। वह कालिय को मार डालने के लिए उसकी ओर तेजी से झपटा।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी बतलाते हैं कि महावेग शब्द इस बात का सूचक है कि गरुड़ की अत्यधिक गति को कोई नहीं रोक सकता।

तमापतन्तं तरसा विषायुधः
प्रत्यभ्ययादुत्थितनैकमस्तकः ।
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद्ददायुधः
करालजिह्वोच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६॥

शब्दार्थ

तम्—उसपर; आपतन्तम्—आक्रमण करता हुआ गरुड़; तरसा—तेजी से; विष—विषैले; आयुधः—हथियार लिये हुए; प्रति—की ओर; अभ्ययात्—दौड़ा; उत्थित—उठाया; न एक—अनेक; मस्तकः—अपने सिर; दद्भिः—विषैले दाँतों से; सुपर्णम्—

गरुड़ को; व्यदशत्—काट लिया; दत्-आयुधः—दाँतरूपी हथियारों से; कराल—भयावनी; जिह्वा—जीभ; उच्छ्वसित—फैला दिया; उग्र—तथा भीषण; लोचनः—आँखें।

ज्योंही गरुड़ तेजी से कालिय पर झपटा त्योंही विष के हथियार से लैस उसने वार करने के लिए अपने अनेक सिर उठा लिये। अपनी भयावनी जीभें दिखलाते और अपनी उग्र आँखें फैलाते हुए उसने अपने विष-दत्त हथियारों से गरुड़ को काट लिया।

तात्पर्य : आचार्यों का कहना है कि कालिय ने विष वमन करके शत्रु पर विष आयुध का इस्तेमाल दूर से और अपने भयावने दाँतों से डसकर निकट से किया।

तं ताक्ष्र्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान्
प्रचण्डवेगो मधुसूदनासनः ।
पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा
जघान कद्रुसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तम्—उस कालिय को; ताक्ष्र्य-पुत्रः—कश्यप का पुत्र; सः—वह गरुड़; निरस्य—झटककर; मन्यु-मान्—क्रोध से भरा; प्रचण्ड-वेगः—अत्यन्त तेजी से, गति करते हुए; मधुसूदन-आसनः—मधुसूदन कृष्ण का वाहन; पक्षेण—अपने पंख से; सव्येन—बाएँ; हिरण्य—स्वर्ण जैसे; रोचिषा—तेज वाले; जघान—वार किया; कद्रु-सुतम्—कद्रु-पुत्र (कालिय) पर; उग्र—प्रचण्ड; विक्रमः—पराक्रम।

ताक्ष्र्य का क्रुद्ध पुत्र कालिय के वार को पीछे धकेलने के लिए प्रचंड वेग से आगे बढ़ा। उस अत्यन्त शक्तिशाली भगवान् मधुसूदन के वाहन ने कद्रु के पुत्र पर अपने स्वर्ण जैसे चमकीले बाएँ पंख से प्रहार किया।

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ।
ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

सुपर्ण—सुपर्ण के; पक्ष—पंख से; अभिहतः—चोट खाकर; कालियः—कालिय; अतीव—अत्यधिक; विह्वलः—बेचैन; ह्रदम्—सरोवर में; विवेश—घुस गया; कालिन्द्याः—यमुना नदी के; तत्-अगम्यम्—गरुड़ द्वारा थाह पा सकने में अक्षम; दुरासदम्—घुसने में कठिन।

गरुड़ के पंख की चोट खाने से कालिय अत्यधिक बेचैन हो उठा अतः उसने यमुना नदी के निकटस्थ सरोवर में शरण ले ली। गरुड़ इस सरोवर में नहीं घुस सका। निस्सन्देह, वह वहाँ तक पहुँच भी नहीं सका।

तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ।
निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ (उस सरोवर में); एकदा—एक बार; जल-चरम्—जल के प्राणी को; गरुडः—गरुड़ ने; भक्ष्यम्—अपना खाद्य; ईप्सितम्—इच्छा की; निवारितः—मना किया गया; सौभरिणा—सौभर मुनि द्वारा; प्रसह्य—साहस करके; क्षुधितः—भूखा; अहरत्—खा लिया।

उसी सरोवर में गरुड़ ने एक बार एक मछली को, जो कि उसका सामान्य भक्ष्य है, खाना चाहा। जल के भीतर ध्यानमग्न सौभरि मुनि के मना करने पर भी गरुड़ ने साहस किया और भूखा होने के कारण उस मछली को पकड़ लिया।

तात्पर्य : अब शुकदेव गोस्वामी बता रहे हैं कि गरुड़ यमुना नदी के उस सरोवर तक क्यों नहीं पहुँच सका। मछलियों को खाना पक्षियों का स्वभाव है, अतः यदि गरुड़ भगवान् की व्यवस्था के फलस्वरूप मछली खाकर अपना जीवन निर्वाह करता है, तो वह कोई अपराध नहीं करता। किन्तु सौभरि मुनि द्वारा एक महानतर प्राणी को अपनी भोज्य वस्तु खाने से मना किया जाना एक अपराध बन जाता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार सौभरि ने दो अपराध किये—एक तो यह कि उन्होंने गरुड़ जैसे उच्च महात्मा को आदेश देने का साहस दिखलाया और दूसरा यह कि उन्होंने गरुड़ को उसकी इच्छा तृप्त करने से रोका।

मीनान्सुदुःखितान्दृष्ट्वा दीनान्मीनपतौ हते ।
कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यक्षेममाचरन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मीनान्—मछलियों को; सु-दुःखितान्—अत्यन्त दुखी; दृष्ट्वा—देखकर; दीनान्—दीन; मीन-पतौ—मछलियों का राजा; हते—मारे जाने से; कृपया—कृपावश; सौभरिः—सौभरि; प्राह—बोला; तत्रत्य—वहाँ पर रह रहे; क्षेमम्—कुशलता; आचरन्—आचरण करते हुए।

उस सरोवर की अभागिनी मछलियों को अपने स्वामी की मृत्यु के कारण अत्यन्त दुखी देखकर सौभरि मुनि ने इस आशय से शाप दे दिया कि वे उस सरोवर के रहनेवालों के कल्याण हेतु कृपापूर्ण कर्म कर रहे हैं।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब हमारी तथाकथित दया भगवान् के आदेश से मेल नहीं खाती तो उससे केवल उत्पात मचता है। चूँकि सौभरि ने उस सरोवर में आने से गरुड़ को मना किया था अतएव कालिय उसमें घुस गया और उसने उसे अपना आवास बना

लिया। इस तरह सरोवर के सभी निवासियों पर शाप आ गिरा।

अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान्स खादति ।
सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस सरोवर में; प्रविश्य—घुसकर; गरुडः—गरुड़; यदि—यदि; मत्स्यान्—मछलियों को; सः—वह; खादति—खाता है; सद्यः—तुरन्त; प्राणैः—प्राणों से; वियुज्येत—हाथ धोना पड़ता; सत्यम्—सही सही; एतत्—यह; ब्रवीमि—कह रहा हूँ; अहम्—मैं।

''यदि गरुड़ ने फिर कभी इस सरोवर में घुसकर मछलियाँ खाईं तो वह तुरन्त अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। मैं जो कह रहा हूँ वह सत्य है।''

तात्पर्य : इस प्रसंग में आचार्यों की व्याख्या यह है कि सौभरि मुनि ने मछली के प्रति भौतिक अनुरक्ति एवं स्नेह के कारण, स्थिति पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार नहीं किया। *श्रीमद्भागवत* के नवें स्कंध में इसी अपराध के कारण उनका पतन दिखलाया गया है। मिथ्या दम्भ के कारण सौभरि मुनि की तपोशक्ति जाती रही और इसी के साथ उनका आध्यात्मिक सौन्दर्य तथा सुख भी। जब गरुड़ यमुना नदी में आया तो सौभरि मुनि ने सोचा, ''वह भले ही भगवान् का निजी पार्षद क्यों न हो मैं उसे शाप देकर रहूँगा और यदि मेरे आदेश का पालन नहीं करेगा तो मार भी डालूँगा।'' किसी प्रतिष्ठित वैष्णव के विरुद्ध ऐसा आक्रामक रवैया जीवन में किसी के भी पवित्र पद को निस्सन्देह विनष्ट कर देगा।

नवें स्कन्ध में बतलाया गया है कि सौभरि मुनि ने अनेक सुन्दर स्त्रियों से विवाह किया और उनकी संगति से भारी कष्ट सहे। किन्तु चूँकि उन्होंने वृन्दावन में यमुना की शरण ले रखी थी इसलिए उन्हें ख्याति प्राप्त हो गई और अन्त में उनका उद्धार हो गया।

तत्कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ।
अवात्सीद्गरुडाद्भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तम्—वह; कालियः—कालिय; परम्—एकमात्र; वेद—जानता था; न—नहीं; अन्यः—दूसरा; कश्चन—कोई; लेलिहः—सर्प; अवात्सीत्—रहता था; गरुडात्—गरुड़ से; भीतः—भयभीत; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; च—तथा; विवासितः—निकाला गया।

सारे सर्पों में केवल कालिय ही इस बात को जानता था और गरुड़ के भय से उसने यमुना के सरोवर में अपना निवास बना रखा था। बाद में कृष्ण ने उसे निकाल भगाया।

कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्त्रग्गन्धवाससम् ।
महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥
उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ।
प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याभिरेभिरे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

कृष्णम्—कृष्ण को; ह्रदात्—सरोवर से बाहर; विनिष्क्रान्तम्—निकलकर; दिव्य—दिव्य; स्त्रक्—मालाएँ पहने; गन्ध—सुगन्धि; वाससम्—तथा वस्त्र; महा-मणि-गण—अनेक सुन्दर मणियों से; आकीर्णम्—ढका हुआ; जाम्बूनद—सोने से; परिष्कृतम्—अलंकृत; उपलभ्य—देखकर; उत्थिताः—ऊपर उठते; सर्वे—सभी लोग; लब्ध-प्राणाः—जिन्हें प्राण मिल गये हों; इव—सदृश; असवः—इन्द्रियाँ; प्रमोद—हर्षपूर्वक; निभृत-आत्मानः—पूरित होकर; गोपाः—ग्वालों ने; प्रीत्या—स्नेहपूर्वक; अभिरेभिरे—उनका आलिंगन किया।

[कृष्ण द्वारा कालिय की प्रताड़ना का वर्णन फिर से प्रारम्भ करते हुए शुकदेव गोस्वामी ने कहा]: कृष्ण दिव्य मालाएँ, सुगन्धियाँ तथा वस्त्र धारण किये, अनेक उत्तम मणियों से आच्छादित एवं स्वर्ण से अलंकृत होकर उस सरोवर से ऊपर उठे। जब ग्वालों ने उन्हें देखा तो वे सब तुरन्त उठ खड़े हो गये मानों किसी मूर्छित व्यक्ति की इन्द्रियाँ पुनः जीवित हो उठी हों। उन्होंने अतीव हर्ष से सराबोर होकर स्नेहपूर्वक उनको गले लगा लिया।

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ।
कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन्शुष्का नगा अपि ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

यशोदा रोहिणी नन्दः—यशोदा, रोहिणी तथा नन्द महाराज; गोप्यः—गोपियाँ; गोपाः—ग्वाले; च—तथा; कौरव—हे कुरुवंशी परीक्षित; कृष्णम्—कृष्ण से; समेत्य—मिलकर; लब्ध—फिर से प्राप्त करके; ईहाः—चेतना; आसन्—हो गये; शुष्काः—सूखे हुए; नगाः—वृक्ष; अपि—भी।

अपनी जीवनदायी चेतनाएँ वापस पाकर यशोदा, रोहिणी, नन्द तथा अन्य सारी गोपियाँ एवं ग्वाले कृष्ण के समीप पहुँच गये। हे कुरुवंशी, ऐसे में सूखे वृक्ष भी सजीव हो उठे।

रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ।
प्रेम्णा तमङ्कमारोप्य पुनः पुनरुदैक्षत ।
गावो वृषा वत्सतर्यो लेभिरे परमां मुदम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

रामः—बलराम; च—तथा; अच्युतम्—अच्युत, भगवान् कृष्ण को; आलिङ्ग्य—आलिंगन करके; जहास—हँसे; अस्य—उनका; अनुभाव-वित्—सर्वशक्ति को जानते हुए; प्रेम्णा—प्रेमवश; तम्—उनको; अङ्कम्—अपनी गोद में; आरोप्य—उठाकर; पुनः पुनः—फिर फिर; उदैक्षत—देखा-भाला; गावः—गौवों; वृषाः—साँडों; वत्सतर्यः—बछियों ने; लेभिरे—प्राप्त किया; परमाम्—परम; मुदम्—आनन्द।

भगवान् बलराम ने अपने अच्युत भाई का आलिंगन किया और कृष्ण की शक्ति को अच्छी

तरह जानते हुए हँसने लगे। अत्यधिक प्रेमभाव के कारण बलराम ने कृष्ण को अपनी गोद में उठा लिया और बारम्बार उनकी ओर देखा। गौवों, साँडों तथा बछियों को भी परम आनन्द प्राप्त हुआ।

नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ।
ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७॥

शब्दार्थ

नन्दम्—नन्द महाराज को; विप्राः—सारे ब्राह्मण; समागत्य—आकर; गुरवः—गरुजन; स-कलत्रकाः—अपनी अपनी पत्नियों समेत; ऊचुः—कहा; ते—वे; कालिय-ग्रस्तः—कालिय द्वारा पकड़ा हुआ; दिष्ट्या—दैव से; मुक्तः—छोड़ा गया; तव—तुम्हारा; आत्म-जः—पुत्र।

सारे गुरुजन ब्राह्मण अपनी पत्नियों सहित नन्द महाराज को बधाई देने आये। उन्होंने उनसे कहा, ''तुम्हारा पुत्र कालिय के चंगुल में था किन्तु दैवकृपा से अब वह छूट आया है।''

देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ।
नन्दः प्रीतमना राजन्गाः सुवर्णं तदादिशत् ॥ १८॥

शब्दार्थ

देहि—दीजिये; दानम्—दान; द्वि-जातीनाम्—ब्राह्मणों को; कृष्ण-निर्मुक्ति—कृष्ण की रक्षा; हेतवे—हेतु; नन्दः—नन्द महाराज ने; प्रीत-मनाः—प्रसन्न मन से; राजन्—हे राजा परीक्षित; गाः—गौवें; सुवर्णम्—सोना; तदा—तब; आदिशत्—दिया।

तब, ब्राह्मणों ने नन्द महाराज को सलाह दी, ''तुम्हारा पुत्र कृष्ण सदैव संकट से मुक्त रहे, इससे आश्वस्त रहने के लिए तुम्हें चाहिए कि ब्राह्मणों को दान दो।'' हे राजन्, तब प्रसन्नचित्त नन्द महाराज ने हर्षपूर्वक उन्हें गौवों तथा स्वर्ण की भेंटें दीं।

यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ।
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः ॥ १९॥

शब्दार्थ

यशोदा—माता यशोदा; अपि—तथा; महा-भागा—परम भाग्यशालिनी; नष्ट—खोकर; लब्ध—पुनः पाकर; प्रजा—अपना पुत्र; सती—साध्वी स्त्री; परिष्वज्य—आलिंगन करके; अङ्कम्—गोद में; आरोप्य—उठाकर; मुमोच—टपकाया; अश्रु—आसुँओं की; कलाम्—झड़ी; मुहुः—बारम्बार।

परम भाग्यशालिनी माता यशोदा ने अपने खोये हुए पुत्र को फिर से पाकर उसे अपनी गोद में ले लिया। उनको बारम्बार गले लगाते हुए उस साध्वी ने आँसुओं की झड़ी लगा दी।

तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ।
ऊषुर्व्रयौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस; रात्रिम्—रात्रि में; तत्र—वहाँ; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ; क्षुत्-तृड्भ्याम्—भूख तथा प्यास से; श्रम—थकान से; कर्षिताः—निर्बल हुए; ऊषुः—रहे आये; व्रज-ओकसः—वृन्दावन के लोग; गावः—तथा गौवें; कालिन्द्याः—यमुना नदी के; उपकूलतः—तट के निकट।

हे नृपश्रेष्ठ (परीक्षित), चूँकि वृन्दावन के निवासी भूख, प्यास तथा थकान के कारण अत्यन्त निर्बल हो रहे थे अतः उन्होंने तथा गौवों ने कालिन्दी के तट के निकट ही लेटकर वहीं रात बिताई।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी ने संकेत किया है कि यद्यपि लोग भूख तथा प्यास से निर्बल हो गये थे किन्तु वहाँ पर उपस्थित गौवों का दूध उन्होंने नहीं पिया क्योंकि उन्हें भय था कि उनका दूध सर्प के विष से दूषित न हो गया हो। वृन्दावनवासी अपने प्रिय कृष्ण को वापस पाकर इतने अधिक प्रसन्न थे कि वे अपने अपने घरों को जाना नहीं चाह रहे थे। वे कृष्ण के साथ यमुना तट पर ही ठहरना चाहते थे जिससे वे उन्हें लगातार देख सकें। इसीलिए उन्होंने नदी के तट के निकट विश्राम करने का निश्चय किया।

तदा शुचिवनोद्भूतो दावाग्निः सर्वतो व्रजम् ।
सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तदा—तभी; शुचि—ग्रीष्मकालीन; वन—जंगल में; उद्भूतः—उत्पन्न; दाव-अग्निः—ज्वाला; सर्वतः—सारी दिशाओं में; व्रजम्—वृन्दावन के लोगों को; सुप्तम्—सोये हुए; निशीथे—अर्धरात्रि में; आवृत्य—घेरकर; प्रदग्धुम्—जलाने; उपचक्रमे—लगी।

रात्रि में जब वृन्दावन के सभी लोग सोये हुए थे तो सूखे ग्रीष्मकालीन जंगल में भीषण आग भड़क उठी। इस आग ने चारों ओर से व्रजवासियों को घेर लिया और उन्हें झुलसाने लगी।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टीका की है कि कदाचित् कालिय के किसी विश्वसनीय मित्र ने अपने मित्र का बदला लेने के लिए दावाग्नि का रूप धारण कर लिया था या फिर कंस के किसी अनुयायी असुर ने वह आग लगाई होगी।

तत उत्थाय सम्भ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ।
कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; उत्थाय—जगकर; सम्भ्रान्ताः—विक्षुब्ध; दह्यमानाः—जलने जा रहे; व्रज-ओकसः—व्रज के लोग; कृष्णम्—कृष्ण के पास; ययुः—गये; ते—वे; शरणम्—शरण के लिए; माया—अपनी शक्ति से; मनुजम्—मनुष्य की भाँति प्रकट होनेवाले; ईश्वरम्—ईश्वर को।

तब उन्हें जलाने जा रही विशाल अग्नि से अत्यधिक विचलित होकर वृन्दावनवासी जग पड़े। उन्होंने दौड़कर भगवान् कृष्ण की शरण ली जो आध्यात्मिक शक्ति से सामान्य मनुष्य के रूप में प्रकट हुए थे।

तात्पर्य : श्रुति या वैदिक मंत्र कहते हैं—*स्वरूपभूतया नित्य-शक्त्या मायाख्यया*—भगवान् की शाश्वत शक्ति जिसका नाम माया है उनके आदि रूप में निहित है। इस तरह भगवान् के शाश्वत आध्यात्मिक शरीर में असीम शक्ति रहती है, जो परम सत्य की सर्वज्ञ इच्छा के अनुसार सारे जगत का बिना प्रयास संचालन करती है। वृन्दावनवासियों ने यह सोचते हुए कृष्ण की शरण ली कि यह वरप्राप्त बालक अवश्य ही हमें बचाने के लिए ईश्वर द्वारा शक्तिप्रदत्त होगा। उन्होंने कृष्ण के जन्मदिवस पर गर्गमुनि द्वारा कहे गये वचनों का स्मरण किया—*अनेन सर्वदुर्गाणि यूयम् अञ्जस्तरिष्यथ*—उनके बल पर आप सारे अवरोधों को पार कर सकेंगे (भागवत १०.८.१६)। इसलिए कृष्ण पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले वृन्दावनवासियों ने इस आशा के साथ कृष्ण की शरण ग्रहण की कि वे दावाग्नि से होने वाली बरबादी से बचाये जा सकेंगे।

कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ।
एष घोरतमो वह्निस्तावकान्ग्रसते हि नः ॥ २३॥

शब्दार्थ

कृष्ण—हे कृष्ण; कृष्ण—हे कृष्ण; महा-भाग—समस्त वैभव के स्वामी; हे राम—हे बलराम, हे समस्त आनन्द के स्रोत; अमित-विक्रम—असीम शक्तिवाले; एषः—यह; घोर-तमः—अत्यन्त भयानक; वह्निः—अग्नि; तावकान्—आपके लोगों को; ग्रसते—निगले जा रही है; हि—निस्सन्देह; नः—हमको।

[वृन्दावन वासियों ने कहा] हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे समस्त वैभव के स्वामी, हे असीम शक्ति के स्वामी राम, यह अत्यन्त भयानक अग्नि आपके भक्तों को निगल ही जाएगी।

सुदुस्तरान्नः स्वान्पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो ।
न शक्नुमस्त्वच्चरणं सन्त्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सु-दुस्तरात्—दुर्लंघ्य; नः—हम; स्वान्—अपने भक्तों की; पाहि—रक्षा कीजिये; काल-अग्नेः—कालरूपी अग्नि से; सुहृदः—आपके असली मित्रगण; प्रभो—हे परम स्वामी; न शक्नुमः—हम अक्षम हैं; त्वत्-चरणम्—आपके पाँवों को; सन्त्यक्तुम्—छोड़ सकने में; अकुतः-भयम्—सारे भय को भगानेवाले।.

हे प्रभु, हम आपके सच्चे मित्र तथा भक्त हैं। कृपा करके आप इस दुर्लंघ्य कालरूपी अग्नि से हमारी रक्षा कीजिये, समस्त भय को भगाने वाले आपके चरणकमलों को हम कभी नहीं त्याग सकते।

तात्पर्य : वृन्दावनवासियों ने कृष्ण से कहा, ''यदि यह भयानक अग्नि हमें परास्त कर देती है, तो हम आपके चरणकमलों से बिछुड़ जायेंगे जो कि हमारे लिए असह्य है। अत: आप हमारी रक्षा करें जिससे हम आपके चरणकमलों की सेवा करते रहें।''

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ।
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

इत्थम्—इस प्रकार से; स्व-जन—अपने ही भक्तों की; वैक्लव्यम्—विकलता; निरीक्ष्य—देखकर; जगत्-ईश्वरः—जगत के स्वामी; तम्—उस; अग्निम्—अग्नि को; अपिबत्—पी लिया; तीव्रम्—भयानक; अनन्तः—अनन्त भगवान् ने; अनन्त-शक्ति-धृक्—असीम शक्ति को धारण करनेवाले।.

अपने भक्तों को इतना व्याकुल देखकर जगत के अनन्त स्वामी तथा अनन्त शक्ति को धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ने उस भयंकर दावाग्नि को निगल लिया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के अन्तर्गत ''कालिय का इतिहास'' नामक सत्रहवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।